The Academic
International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 1 | Issue 2 | July-September 2023
ISSN: 2583-973X
Website: www.theacademic.in

ऋक्संहिता में योग का स्वरुप

Narendra Pradhan
Lecturer in Sanskrit, Chitrada College, Mayurbhanj
Dr. Prasanta Kumar Sethi *
Asst. Professor, Gangadhar Meher University, Sambalpur

ARTICLE DETAILS

Research Paper

Article History
Received : September 09, 2023
Accepted : September 22, 2023

Keywords :
योग, ऋग्वेद, मन्त्र, वेद, संहिता और अप्राप्तवस्तु

ABSTRACT

विश्व की उपलब्ध प्राचीन ग्रन्थों मे वेद सर्वप्राचीन है । वेद की लोकप्रियता न केवल भारत में अपि तु समग्र विश्व में है । वेद समस्त प्रमाणों का और ज्ञानों का उपाय निर्देशित करता है । अपौरुषेय होने के कारण वेद स्वयं हि प्रमाण है । चार वेदों में से ऋग्वेद सर्वप्राचीन वेद । शाकल शाखा के अनुसार ऋग्वेद की १० मण्डल, ८५ अनुवाक, १०२८ सूक्त, १०५८० मन्त्र है । ऋग्वेदीय संहिता के सभी मन्त्रों में हजार हजार शब्दों का प्रयोग हुआ है । उन शब्दों में से योग शब्द का वहुवार प्रयोग हुआ दिखाइ देता है । यद्यपि योगशब्द वैदिकक्लिष्ट शब्दों में नहीं आता है तथापि इस शब्द की महत्व नगण्य नहीं हैं । ऋग्वेद की अनुशीलन से ये पता चलता है की योग शब्द भिन्न भिन्न अर्थो में प्रयोग हुआ है । कहीं संयोग अर्थ में तो कहीं योगसुत्र के दार्शनिक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । एक ही मन्त्र में प्रयुक्त योग शब्द कैसे भिन्न भिन्न अर्थ प्रकाश करता है, ऋषि और सूक्त के परिवर्त्तन होने पर भी कैसे अर्थ में परिवर्त्तन आता है उसका अनुशीलन यहां किया गया है ।

योग का स्वरुप :-

मन्त्रों का समूहों को ऋग्वेदसंहिता कहा जाता है । वेद के अन्य संहितायों से ऋग्वेद संहिता प्रामाणिक माना जाता है । इसलिए तै.संहिता में कहा गया है कि-

*Corresponding Author

यद् वै यज्ञस्य साम्ना यजुषा क्रियते शिथिलं तद् यद् ऋचा तद् दृढम् ।[i]

महाभाष्य के अनुसार ऋग्वेद की २१ शाखाएँ है । वे शाखाएँ शाकल, वाष्कल, आस्वलायन, माण्डुकायन……इत्यादि । परन्तु संप्रति केवल पाञ्च शाखाओँ के नाम ही दिखाइ दे रहे हैँ । इन पाञ्च शाखाओँ में से केवल शाकल शाखा ही पूर्णतः और वाष्कल शाखा आंशिक रुप से उपलब्ध होता है । समग्र ऋग्वेद में १५३८२६ शब्द और ४३२०० अक्षरों का प्रयोग हुआ है ।[ii] शतपथब्राह्मण में ऋक्संहिता की अक्षर संख्या निर्देशित करते हुए कहा गया है कि-

'स ऋचो व्यौहत् । द्वादशवृहती सहस्राणि । एतावत्यौ ह्यर्चियाः प्रजापतिसृष्टाः' ।[iii]

यद्यपि यास्काचार्य योग शब्द का क्लिष्ट शब्द के रुप में ग्रहण नहीं किया है तथापि वैदिक संहितायों में इस शब्द की शताधिक वार प्रयोग किया गया है । कहीं स्वतन्त्र रुप में कहीं अन्य शब्द के साथ मिलकर प्रयुक्त हुआ है । योगशब्द ऋग्संहितायों में हि उन्नीस (१९) वार और योगक्षेम एकवार प्रयोग हुआ है । योग शब्द की प्रथम प्रयोग ऋक्संहिता की निम्नोक्त मन्त्र में हुआ है । यथा-

स घा नो योग आ भुवत्स राये पुरंन्ध्यां ।
गमद्वाजेभिरा स नः ।।[iv]

इस मन्त्र में ऋषि भगवान् की स्तुति करते हैं की आप उस योग के साथ आए जो योग हमको सभी सुखों की पूर्णता प्रदान करेगा । यहाँ योग का अर्थ है जो अप्राप्त है उसे प्राप्त करना । अप्राप्त वस्तु कि भी दो अर्थ निकलता है । आध्यात्मिक पक्ष में मनुष्य के अप्राप्त उद्देश्य की प्राप्ति योग है । राजा के पक्ष मे अप्राप्त धन और ऐश्वर्य प्राप्ति योग है ।

परन्तु **'यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन । स धीनां योगमिन्वति**[v]**'** मन्त्र में योग शब्द एक भिन्नार्थ प्रकाश करता है । इस मन्त्र में प्रयुक्त योग शब्द युजिर् योगे अर्थ में प्रयोग किया गया है । वेङ्कटमाधव के मतानुसार कर्मों का योग **'धीनां योगम्'** पद की अर्थ है । मुद्गल के अनुसार मन की अनुष्ठान के साथ सम्बन्ध योग है । कर्मों के साथ सम्बन्ध योग है इति स्कन्दस्वामी का मत । वुद्धि और कर्म कि संयोग हि योग इति इस मन्त्र में प्रयुक्त योग शब्द का अर्थ । इस संहिता की तीसवें सूक्त में **'योगे योगे'** पद की उल्लेख है । यथा-

योगेयोगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे ।
सखाय इन्द्रमूतये ।।[v]

इस मन्त्र में प्रयुक्त योग शब्द परिश्रम से प्राप्त पदार्थ वताया गया है । अर्थात् धन प्राप्ति के प्रत्येक अवसर पर इन्द्र की स्तुति करनी चाहिये । **योगे योगे** पद का अर्थ **तत्कर्मोपक्रमे** अथवा पदार्थे पदार्थे है । इस मन्त्र में प्रयुक्त योग शब्द भी युजिर् योगे अर्थे प्रयोग हुआ है । पुनश्च नासत्य की महिमा वर्णन के अवसर पर ऋषि स्तुति करते हैं की-

क्व त्री चक्रा त्रिवृत्तो रथस्य क्व त्रयो वन्धुरो ये सनीलः ।
कदा योगो वाजिनो रासभस्य येन यज्ञं नासत्योपयाथः ।।[vi]

यहाँ प्रयुक्त योग शब्द पूर्वोक्त मन्त्रों में प्रयुक्त योगार्थ से सामान्य भिन्न इति प्रतीत होता है । सायणाचार्य के अनुसार गृह सदृश रथ के उपर स्थित उपवेशन स्थान की तीन चक्रों के ती रासभों के साथ संयोग को योग कहा जाता है । परन्तु दयानन्द इस अर्थ के साथ आध्यात्मिक दृष्टिकोण से भी योग शब्द की अर्थ परिभाषित किया है । देहरुपी रथ अग्नि वायु जल आदि तत्त्वों के त्रिगुणात्मक संयोजन से निर्मित होता है । उस रथ कि वात-पित्त और कफ आदि तीन चक्र होते हैं । मन वाक् और प्राण तीन अश्व हैं । सत्व रज और तम तीन दण्ड है । उस देहरुपी रथ के साथ प्राणादि रुपी अश्वों के संयोग को योग कहा गया है ।

द्वितीय मण्डल में योग शब्द का एक वार हि प्रयुक्त हुआ है । इस मण्डल की चौतीस तम सुक्त में ऋषि गृत्समद अग्नि को स्तुति करते है की-

वाजयन्निव नू रथान्योगाँ अग्नेरुप स्तुहि ।
यशस्तमस्य मीडहुषः ।।[ग्ग]

इस मन्त्र में प्रयुक्त योग शब्द का अर्थ ऋ.१.३४.९ मन्त्र में प्रयुक्त योग शब्द से समानता देखी जाती है । दयानन्द का मतानुसार विमान चालना ज्ञान यहाँ प्रयुक्त योग शब्द की अर्थ । कारण विमान, अग्निगृह और पहियों के उत्तम रुप से संयोजन हि योग है । वेङ्कटमाधव के अनुसार योग का अर्थ उपाय है । परन्तु तृतीय मण्डल में प्रयुक्त योगशब्द भिन्नार्थ प्रकाश करती है । यथा-

आग्निं यन्तुरमप्तिरमृतस्य योगे वनुषः ।
विप्रा वाजैः समिन्धते ।।[ई]

यहाँ योग शब्द स्वतन्त्र रुप से कोइ अर्थ प्रकाश नहीं करता है । ऋत शब्द के साथ संयुक्त होनेपर हि संपूर्ण अर्थ प्रकाशित होता है । एक हि योग शब्द की अर्थ ऋषि अनुसार कैसे परिवर्त्तन होता है उसकी उदाहरण यहाँ मिलती है । ऋत कि अर्थ सत्य और ऐश्वर्य है। **'ऋतस्य योगे'** अर्थात् सत्संग प्राप्त करके ही एक साधारण मनुष्य विद्वान् बन सकता है । परन्तु वेङ्कटमाधव ऋतस्य योगे पद की अर्थ यज्ञ की प्रारम्भ में इति परिभाषित करते है ।

चतुर्थ मण्डल में प्रयुक्त योग शब्द का अर्थ योगदर्शन का योग के साथ साम्यता परिलक्षित होता है । अर्थात् यहाँ प्रयुक्त योग शब्द की अर्थ **'योगः चित्तवृत्तिनिरोधः'** है । यथा-

क्रतुयन्ति क्षतयो योग उग्रा- शुषाणासो तिथो अर्णसातौ ।
सं यद्भिशोऽववृत्रन्त युध्मा आदिन्नेम इन्द्रयन्ते अभीके ।।[उ]

दयानन्द के अनुसार इस मन्त्र में प्रयुक्त योग का अर्थ यमनियमों के अभ्यास है ।इन्द्रियों के विषयवासनायों के प्रति अनासक्ति भाव को योग कहा जाता है । परन्तु वेङ्कटमाधव **'योग'** की अर्थ **धनयोगार्थे'** इति परिभाषित करते हैं । परमात्मा के महत्व का वर्णन करते समय परमात्मा देवतायों और मनुष्यों को शिक्षा देते हैं की परमात्मा सबके लिए समान है । सात दृढ साधनों को वश में करके लोग मुझे पाने का मार्ग खोज लेते हैं । चक्षुजिह्वादि पाञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ

और मनवुद्धि मिलकर सात साधन होते हैं । इस सात साधनों का संयमन हि योग कहा जाता है । अर्थात् यमनियमों का पालन तथा चित्तवृत्तियों का निरोध कोयोग कहा गया है । यथा-

एकस्मिन् योगे भूरणा समाने परि वां सप्तस्त्रवतो रथोगात् ।
न वायँन्ति सूभ्वोदेवयुक्ता ये वां पूर्षुतरण्यो यो वहन्ति ।।[i]

पञ्चम मण्डल में प्रयुक्त योग शब्द किन्तु साधारण अर्थ का वोध कराता है । इस मन्त्र में प्रयुक्त योगशब्द स्वतन्त्र रुप से कोइ अर्थ प्रकाशित नहीं करती है । सायण के अनुसार **'योगेरथे'** पद की अर्थ **'संयोगयोग्य दृढरथे'** है । यहाँ योग का अर्थ संयोग है । यथा-

असावि ते जुजुषाणाय सोमः क्रत्वे दक्षाय वृहते मदाय ।
हरी रथे सुधुरा योगे अर्वामिन्द्र प्रिया कृणुहि हूयमानः ।।[ii]

अष्टम मण्डल में योग शब्द का एक हि वार प्रयोग हुआ है जहाँ परमात्मा की सर्वोत्कृष्टता प्रतिपादन किया गया है । यथा-

ज्योतिष्मन्तं केतुमन्तं त्रिचक्रं सुखं रथं सुषद भूरिवारम् ।
चित्रामघा यस्य योगेऽध्रिझे तं वां हुवे अतिरिक्तं पिवध्यै ।।[iii]

परमात्मा सर्वव्यापक तथा सचराचरसंसार की प्रकाशक और प्राणदायक है । उस परमात्मा की जीवात्मा के साथ संयोग से प्रभात होता है । अर्थात् अज्ञान रुपी अन्धकार का नष्ट हो जाता है । यहाँ परमात्मा की जीवात्मा के साथ संयोग को योग कहा गया है ।

दशम मण्डल की पाञ्च स्थानों में योग शब्द दृष्टिगोचर होता है । इस मण्डल का तीस तम सूक्त में योग शब्द का प्रथम प्रयोग होता हुआ दिखाइ देता है । यथा-

हिनोता नो अध्वरं देवयज्या हिनोत ब्रह्मसनये धनानाम् ।
ऋतस्य योगे वि ष्यध्वमूघः श्रुष्टीवरीर्भूतनास्मभ्यमापः ।।

इस मन्त्र में भी योग शब्द ऋत के साथ मिलकर अर्थ प्रकाशित करती है । यहाँ **'ऋतस्य योगे'** पद का अर्थ **'यज्ञस्य संयोगे'** है । परन्तु ऋ.१०.५.९ मन्त्र[iv] में प्रयुक्त योग शब्द सामान्य भिन्नार्थ प्रकाश करती है । यद्यपि योग शब्द का अर्थ संयोग इति अर्थ परिभाषित किया गया है तथापि अभिषव पाषाणों का सोम के साथ संयोग को योग कहा गया है । पुनश्च ऋ.१.३९.१२ मन्त्रे योग शब्द का अर्थ में परिवर्त्तन हो जाता है । यथा-

आ तेन यातं मनसो जवीयसा रथं यं वामृभवश्चक्रुरश्विना ।
यस्य योगे दुहिता जायते दिव उभे अहनि सुदिने विवस्वतः ।।

यहाँ **'रथस्य योगे'** पद का प्रयोग हुआ है । **'रथमारुह्य'** इति इस पद की अर्थ है ।

पञ्चम मण्डल मे यद्यपि योग शब्द क्षेम के साथ मिलकर प्रयोग हुआ है तथापि योग और क्षेम के मध्य में व्यवधान है । परन्तु अर्थ योगक्षेम का क ही परिभाषित होता है । यथा-

पूष्यात्क्षेमे अभि योगे भवात् युभे वृतौ संयती सं जयाति ।
प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवाति यः इन्द्रपि सूतसोमो ददाशत् ।।[ि]

प्रथम पक्षे अप्राप्त वस्तुयों का प्राप्ति और प्राप्त वस्तुयों का रक्षा योगक्षेम है । अप्राप्त राज्य की प्राप्ति योग है और प्राप्त राज्य की अथवा प्रजायों के रक्षा और सुशासन क्षेम है । इस मन्त्र में वद्युत् विद्या और अग्निविद्या का वर्णन है । अतः ये दोनो विद्यायों का प्राप्ति योग है और उस विद्या की उत्तम रुप से स्वजीवन में परिपालन करना क्षेम है ।

ऋ.७.५४.३ मन्त्र में[िन] प्रयुक्त योगक्षेम का अर्थ यद्यपि अप्राप्त वस्तुयों का प्राप्ति तथा प्राप्त वस्तुयों का रक्षा करना है तथापि गृहस्थीयों का सज्जनों से अप्राप्त गुणों का प्राप्ति योग है और प्राप्त गुणों का रक्षा अथवा दैनन्दिन जीवन में उन गुणों का उत्तम रुप से परिपालन करना क्षेम है । ऋग्वेद का सप्तम मण्डल का निम्नोक्त मन्त्र में भी योगक्षेम शब्द का प्रयोग हुआ है । यथा-

अयं सु तुभ्यं वरुण स्वधावो हृदि स्तोम उपश्रितश्चिदस्तु ।
शं नः क्षेमे शमु योगे नो अस्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।।[िनन]

यहाँ भी योगक्षेम का अर्थ अप्राप्त वस्तुयों का प्राप्त तथा प्राप्त वस्तुयों का रक्षा करना । परन्तु योग का अर्थ अप्राप्त ज्ञान की प्राप्ति और प्राप्त ज्ञान की स्वजीवन में परिपालन करना क्षेम है । अर्थात् जिस ज्ञान को मनुष्य साधारण जीवन में प्राप्त नहीं कर सकता उस ज्ञान को अलभ्य ज्ञान कहा गया है, उस ज्ञान की प्राप्ति करना योग है । ऋग्वेद का दशम मण्डल के अन्तर्गत दो स्थानों में योग शब्द का उल्लेख मिलता है ।[िनन] परन्तु ऋ.७.८६.८ मन्त्र में योग का जो परिभाषा सायण के द्वारा परिभाषित किया गया है वो अर्थ हि इन दो मन्त्रों में प्रयुक्त योग शब्द का अर्थ है ।

उपसंहार- वेद सनातन धर्म तथा आर्यसमाज की आदि ग्रन्थ है । वेद न केवल सनातन धर्म का अपि तु समग्र मानव समाज की कल्याण के लिए सर्वज्ञान प्रदर्शक ग्रन्थ रुप में स्वीकार किया जाता है । वेद मानव धर्म की प्रतिपादक ग्रन्थ तथा मानव सभ्यता के लिए ईश्वर प्रदत्त आदि धर्मग्रन्थ है । वेदोऽखिलो धर्ममूलम् वाक्य के अनुसार सभी धर्म का मूल वेद है । वेदों में प्रयुक्त प्रत्येक वाक्य अथवा शब्द धर्म का प्रतिपादन करता है । वेदों में न केवल धार्मिक और आध्यात्मिक वर्णन उपलब्ध होता है अपि तु राजनैतिक सामाजिक वैज्ञानिक तत्वों का वर्णन है । ऋग्वेदसंहिता में योग शब्द का जो परिभाषा परिभाषित किया गया है उस परिभाषा अन्यत्र उपलब्ध नहीं है । यहाँ प्रमाणित होता है की वैदिक संहितायों में प्रयुक्त प्रत्येक शब्दों का स्वतन्त्र महत्व है ।

Endnotes

(ग) तै.स.-६६-५,१०-३
(गग) शाकल्यदृष्टेः पदलक्षमेकं सार्धं च वेदे त्रिसहस्त्रयुक्तम् ।

शतानि चाष्टौ दशकद्वयं च पदानि षट् चेति हि चर्चितानि ।
भवति चत्वारिंशत् सहस्राणि द्वात्रिंशच्चाक्षरसहस्राणि ।। अनु. ४५ ।।

(xxx) श.ब्रा. १०.४.२.२.२३ ।।

(xxxi) ऋ.१.५.३ ।।

(xxxii) तत्र. १.१८.७ ।।

(xxxiii) तत्र.१/३०/७ ।।

(xxxiv) तत्र.१/३४/९ ।।

(xxxv) तत्र. २.८.१ ।।

(xxxvi) तत्र.३.२७.११ ।।

(xxxvii) तत्र.४.२४.४ ।।

(xxxviii) तत्र.७.६७.८ ।।

(xxxix) तत्र-५/४३/५ ।।

(xl) तत्र.८/५८/३ ।।

(xli) अद्वेषोअद्य वर्हिषः स्तरीमणि ग्राब्णां योगे मन्मनः साध इमहे ।
आदित्यानां शर्मणि स्था भुरण्यसि स्वंस्त्यऽग्निं समीधानमीमहे ।।

(xlii) ऋ.-५.३७.५ ।।

(xliii) वास्तोष्पतेः शग्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या ।
पाहि क्षेमे उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।।

(xliv) ऋ.-७/८६/८ ।।

(xlv) तत्र.-१०/८९/१०, १०.१६६.५ ।।

Bibliography

1. ऋग्वेदसंहिता, भाग-३,वैदिक संशोधन मण्डल, पौना, १९४१ ।
2. मोक्षमूलरः(सं):ऋग्वेदसंहिता(श्री मत्सायणाचार्य विरचित-माधवीय वेदार्थप्रकाश सहिता), चौखम्वा कृष्णदास अकादमी,वाराणसी ।
3. बश्यम्, विजयराधवन्(सं), तैत्तिरीय संहिता, हैदरावाद(२००५)
4. शास्त्री, राजाराम, ऋक्संहिता, भाग-१,गणपतकऋष्णाजौमुद्रणालय, १८१०शकाब्दः ।
5. शास्त्री,विश्वबन्धुः अन्यश्चःवैदिक-पदानुक्रम-कोषः,सांहितिकस्य,१मस्य विभागस्य ४र्थः खण्डः, होशियारपुरम्, विशेश्वरानन्द-वैदिक-शोधसंस्थानम् ।
6. सातवलेकर, दामोदर, ऋग्वेदसंहिता, १९४० ।
7. Apte Harinarayan,patanjal yogasutrani, Anandashrama mudranalaya, 1904.
8. Clayton, A.C, The Rgveda and Vedic Religion, Bharati Prakashan,Varanasi(1980).
9. Macdonell, A.A, The Vedic Mythology, Indological Book House, Varanasi(1971).
10. Suryakanta, A Practical Vedic Dictionary, Oxford University Press(1981).